विचार बिन्दु

मन की प्रसन्नता से समस्त मानसिक और शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। –रामदास

प्रतिबद्धता भी, संवेदनशीलता भी

किसी कलाकार के साथ मंच पर घटित कोई अप्रिय घटना केवल उस कलाकार या कार्यक्रम तक सीमित नहीं रहती। वह हमारे सामाजिक व्यवहार, हमारी अपेक्षाओं और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता के बारे में भी बहुत कुछ कह जाती है। हाल में उत्तराखंड के कुंजापुरी में लोकप्रिय पंजाबी गायक दलेर मेहंदी के साथ जो हुआ, वह इसी दृष्टि से विचारणीय है। दलेर मेहंदी अपनी प्रस्तुति दे रहे थे कि राज्य के एक मंत्री मंच पर आ गए। उन्होंने गायक के प्रदर्शन पर आपत्ति जताई और उन पर नशे में होने का आरोप लगाया। उनका कहना था कि दर्शक दलेर मेहंदी को सुनने आए हैं, लेकिन वे ठीक से गा नहीं पा रहे हैं। घटना का वीडियो सोशल मीडिया पर प्रसारित हुआ और देखते-देखते यह प्रसंग बहस का विषय बन गया।

इस पूरे प्रसंग में मुझे दो बातें महत्त्वपूर्ण लगती हैं। पहली, कलाकार की अपनी प्रतिबद्धता और नैतिक जिम्मेदारी। दूसरी, कलाकार के प्रति समाज, विशेषकर प्रभावशाली व्यक्तियों के व्यवहार में अपेक्षित मानवीय संवेदनशीलता और शालीनता।

किसी कार्यक्रम का निमंत्रण स्वीकार करना केवल पारिश्रमिक के बदले अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का मामला नहीं है। कलाकार जब किसी आयोजन में आने का वचन देता है, तो उसके साथ अनेक अपेक्षाएँ जुड़ जाती हैं। आयोजक उसकी व्यवस्था पर धन खर्च करते हैं, जो लगातार बढ़ता जा रहा है। दर्शक अपना समय निकालते हैं। कई बार दूर-दूर से लोग किसी प्रिय कलाकार को देखने-सुनने आते हैं। उनके लिए वह प्रस्तुति केवल मनोरंजन नहीं, एक भावनात्मक अनुभव भी होती है।

ऐसी स्थिति में कलाकार का दायित्व है कि वह अपनी कला को गंभीरता से ले। यदि स्वास्थ्य अथवा किसी अन्य अपरिहार्य कारण से वह अपेक्षित प्रस्तुति नहीं दे पाएगा, तो उसे आयोजकों को समय रहते इसकी सूचना देनी चाहिए। जरूरत हो तो उनसे संवाद करके कार्यक्रम स्थगित करने या रद्द करने का कठिन निर्णय भी लेना चाहिए। केवल इसलिए मंच पर पहुँच जाना कि वचन दिया जा चुका है, तर्कसंगत नहीं है। वचन निभाने की इच्छा के साथ उसे निभा पाने की क्षमता का आकलन भी जरूरी है।लोकप्रियता के साथ जिम्मेदारी भी आती है। यदि दलेर मेहंदी की प्रस्तुति अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं थी, तो इस पर सवाल उठाना ग़लत नहीं था। आयोजकों और दर्शकों को यह जानने का अधिकार है कि ऐसा क्यों हुआ। यह बात मंचीय कलाकारों के साथ ही अन्य प्रस्तोताओं पर भी लागू होती है। साहित्य की दुनिया में अक्सर ऐसा होता है कि किसी किताब पर चर्चा के लिए आमंत्रित विशिष्ट वक्ता उसे पढ़े बिना पहुँच जाते हैं और अनर्गल बोलने लगते हैं। यदि तैयारी नहीं है, तो निमंत्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए। कोई अपरिहार्य स्थिति आ जाए, तो आयोजकों को विश्वास में लेकर उचित निर्णय करना चाहिए।

अब दूसरी बात। हम अक्सर कलाकार की लोकप्रियता और प्रचारित छवि से इतने अभिभूत रहते हैं कि उसे एक मनुष्य के बजाय उसकी कला के प्रदर्शन का माध्यम मात्र मानने लगते हैं। हमारी अपेक्षा होती है कि वह हर बार वैसा ही गाए, अभिनय करे या प्रस्तुति दे, जैसी हमने उससे पहले देखी-सुनी है। हम भूल जाते हैं कि कलाकार भी उम्र, थकान और बीमारी से प्रभावित होता है। उसकी शारीरिक क्षमताएँ बदल सकती हैं और कभी-कभी वह अपनी कला के सर्वोत्तम प्रदर्शन की स्थिति में नहीं होता।

इसका अर्थ यह नहीं कि दर्शक उसकी हर कमी को सहज ही स्वीकार कर लिया करे। लेकिन क्या हम असंतुष्टि व्यक्त करते समय उसकी परिस्थितियों को जानने की कोशिश कर सकते हैं? किसी कलाकार की आवाज लड़खड़ाने या उसका प्रदर्शन कमजोर होने के अनेक कारण हो सकते हैं। केवल इन संकेतों के आधार पर उसके नशे में होने का निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं है। दलेर मेहंदी के मामले में भी इस आरोप की पुष्टि नहीं हुई है। उन्हें नजदीक से जानने वालों ने यह कहा है कि वे शराब पीते ही नहीं हैं। इसलिए इस आरोप को प्रमाणित तथ्य की तरह नहीं, अपुष्ट आरोप के रूप में ही देखा जाना चाहिए।

इस प्रसंग में मंत्री का व्यवहार भी विचारणीय है। किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में कलाकार अपेक्षित प्रदर्शन न कर रहा हो या दर्शक असंतुष्ट हों, तो आयोजकों अथवा उनके प्रतिनिधियों को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। लेकिन हस्तक्षेप का तरीका भी महत्व रखता है। यदि प्रस्तुति में कमी थी, तो कलाकार से बात की जा सकती थी, स्पष्टीकरण माँगा जा सकता था और अनुबंध के अनुसार कार्रवाई की जा सकती थी। किसी कलाकार को मंच पर सबके सामने रोकना और उस पर गंभीर आरोप लगाना क्या समस्या का सबसे उपयुक्त समाधान था? सोचिए, किसी राजनेता के भाषण के समय कोई नागरिक मंच पर जाकर ऐसा ही व्यवहार करेतो क्या उसे उचित माना जाएगा?

इस समस्या का एक नया पहलू सोशल मीडिया भी है। किसी घटना का छोटा-सा वीडियो सामने आता है और तत्काल फैसले सुनाए जाने लगते हैं। वीडियो में जो दिखाई देता है, उसे ही पूरी घटना मान लिया जाता है। उसके पहले और बाद में क्या हुआ, संबंधित व्यक्तियों की परिस्थितियाँ क्या थीं और आरोपों के समर्थन में क्या प्रमाण हैं, इन सवालों के लिए बहुत कम धैर्य बचा है।

यहाँ प्रश्न किसी मंत्री विशेष का बचाव करने या किसी कलाकार को निर्दोष घोषित करने का नहीं है। प्रश्न सार्वजनिक जीवन की उस मर्यादा का है, जिसमें असहमति और आलोचना के लिए पूरा स्थान हो, लेकिन अपमान और अपुष्ट आरोपों के लिए नहीं। यह जिम्मेदारी तब और बढ़ जाती है जब बोलने वाला कोई मंत्री, अधिकारी या अन्य प्रभावशाली व्यक्ति हो। उसके शब्दों को लोग अधिक गंभीरता से लेते हैं और उसका आरोप किसी की वर्षों की अर्जित प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिह्नलगा सकता है। इसलिए गंभीर आरोप लगाने से पहले तथ्यों की पुष्टि और अपनी बात कहने के तरीके में संयम जरूरी है।

कलाकार के प्रति मेरे मन में सहज ही एक विशेष संवेदना रहती है। इसका कारण केवल यह नहीं कि वे हमारे जीवन में मनोरंजन और आनंद के क्षण लाते हैं। कला का योगदान इससे कहीं व्यापक है। कोई गायक हमारे जीवन की स्मृतियों का हिस्सा बन जाता है। कोई कवि ऐसे शब्द देता है जिनमें हम अपने सुख-दुख पहचानते हैं। कोई अभिनेता किसी चरित्र के माध्यम से हमें अपने समय और समाज को नए ढंग से देखने की दृष्टि देता है। कलाकार और समाज के बीच का रिश्ता केवल लेन-देन का नहीं होता। कलाकार अपनी साधना से समाज को कुछ देता है और समाज उसे स्नेह, सम्मान तथा स्वीकृति देता है। यह रिश्ता कलाकार को जवाबदेही से मुक्त नहीं करता, लेकिन उसकी मानवीय गरिमा की रक्षा की अपेक्षा जरूर करता है। दलेर मेहंदी के गीतों पर वर्षों तक लोग झूमते रहे हैं, उत्सव मनाते रहे हैं। यदि किसी प्रस्तुति में कमी रही, तो उसकी आलोचना होनी चाहिए, लेकिन उस कमी को कलाकार के समूचे व्यक्तित्व और योगदान का पर्याय बना देना न्यायसंगत नहीं होगा। यही बात साहित्यकारों, रंगकर्मियों, चित्रकारों और दूसरे कलाकारों पर भी लागू होती है। असहमति का अर्थ अवमानना नहीं है।

इस समस्या का एक नया पहलू सोशल मीडिया भी है। किसी घटना का छोटा-सा वीडियो सामने आता है और तत्काल फैसले सुनाए जाने लगते हैं। वीडियो में जो दिखाई देता है, उसे ही पूरी घटना मान लिया जाता है। उसके पहले और बाद में क्या हुआ, संबंधित व्यक्तियों की परिस्थितियाँ क्या थीं और आरोपों के समर्थन में क्या प्रमाण हैं, इन सवालों के लिए बहुत कम धैर्य बचा है। आरोप को प्रमाण और प्रतिक्रिया को निर्णय समझ लिया जाता है। कुछ ही घंटों में किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को लेकर ऐसी धारणाएँ बना दी जाती हैं जिन्हें बदलना कठिन होता है।

दलेर मेहंदी के प्रसंग में भी उनकी प्रस्तुति, स्वास्थ्य और कार्यक्रम स्वीकार करने की परिस्थितियों पर चर्चा हो सकती है। लेकिन नशे में होने जैसे गंभीर आरोप को प्रमाण के बिना सच मान लेना उचित नहीं होगा। निष्पक्षता का तकाजा यह भी है कि उनके समर्थन में सामने आने वाली बातों को केवल इसलिए अंतिम प्रमाण न मान लिया जाए कि वे उनके पक्ष में हैं। सभी दावों को उपलब्ध तथ्यों की कसौटी पर परखना जरूरी है।

इस पूरे प्रसंग का सबक यही है कि जिम्मेदारी और संवेदनशीलता को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा नहीं किया जाना चाहिए। कलाकार की जिम्मेदारी है कि वह अपने वचन का सम्मान करे, अपनी क्षमता का आकलन करे और दर्शकों के विश्वास को हल्के में न ले। आयोजकों की जिम्मेदारी है कि वे कार्यक्रम की गुणवत्ता और अनुबंध का ध्यान रखें। समाज और उसके प्रभावशाली व्यक्तियों की जिम्मेदारी है कि शिकायत करते समय प्रमाण, भाषा और व्यवहार की मर्यादा बनाए रखें।कलाकार से जवाब माँगिए, लेकिन उसकी गरिमा की कीमत पर नहीं। उसकी चूक पर सवाल उठाइए, लेकिन उसके योगदान को विस्मृत करके नहीं। किसी कलाकार का सम्मान करने का अर्थ उसकी हर चूक को क्षमा कर देना नहीं है। इसका अर्थ है कि उसकी चूक पर भी उसी न्यायबुद्धि, संयम और मानवीय संवेदनशीलता के साथ विचार किया जाए जिसकी अपेक्षा हम अपने लिए करते हैं।

प्रतिबद्धता कलाकार की भी जरूरी है और संवेदनशीलता समाज की भी। एक सभ्य समाज में इन दोनों में से किसी एक को चुनने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।

–अतिथि संपादक,
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल,
(शिक्षाविद और साहित्यकार)

क्या यह सही है कि पश्चिम से कोई आंधी उठी है जो भारत की संस्कृति, लोकतंत्र के लिए खतरा है या महज एक राजनीतिक सहूलियत का बयान

महावीर सिंह

हाल ही में कई प्रमुख लोगों के बयान आए है जिनका लेबोलबाब अर्थ है कि पश्चिमी सभ्यता भारतीय युवाओं को भड़का रही है। अगर पश्चिमी सभ्यता से इतनी नफरत है, तो पश्चिम से निकले लोकतांत्रिक अधिकारों का लाभ क्यों उठाते हैं?जब पश्चिम से आई तकनीक चाहिए तो आधुनिकता, जब पश्चिम से प्रेरित संसदीय व्यवस्था चाहिए तो लोकतंत्र, लेकिन जब युवा सरकार से सवाल पूछने लगें तो पश्चिमी सभ्यता का दुष्प्रभाव, यह कैसी वैचारिक ईमानदारी है?

अभी हाल ही में संघ के विजयादशमी के संबोधन में पश्चिम से आने वाली एक ऐसी आंधी की बात कही गई जो शेष दुनिया की संस्कृतियों और व्यवस्थाओं को नुकसान पहुंचा रही है। इसी मंच से फ्रांस, नेपाल और बांग्लादेश के आंदोलनों का उल्लेख करते हुए सत्ता परिवर्तन की राजनीति पर भी सवाल उठाए।

इन दिनों आए इस प्रकार के अस्पष्ट भाषणों बयानों से कुछ ऐतिहासिक और संवैधानिक सवाल पैदा हुए हैं। सबसे पहला सवाल, क्या सरकार के खिलाफ आवाज उठाना पश्चिमी सभ्यता का दुष्प्रभाव है या एक जागरूक नागरिक का लोकतांत्रिक अधिकार ?? जिस लोकतंत्र में आज राजनीतिक दल चुनाव लड़ते है, जिस संसदीय व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान में 12 साल से अधिक समय से वर्तमान प्रधानमंत्री हैं, जिस संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और सांसद अपने पदों पर बैठते हैं, उस आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था के विकास में पश्चिमी राजनीतिक चिंतन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अब अगर वोट चोरी कराले, करदे तो वो अलग बात है।

भारत की संसदीय प्रणाली पर ब्रिटेन का प्रभाव है। मौलिक अधिकारों की संवैधानिक संरचना पर अमेरिकी अनुभव का प्रभाव है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे आदर्शों को फ्रांसीसी क्रांति ने विश्वव्यापी राजनीतिक शक्ति प्रदान की। भारत ने इन विचारों की नकल भर नहीं की। हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय स्वतंत्रता संग्रेाम, सामाजिक सुधार आंदोलनों, भारतीय चिंतन और दुनिया के विभिन्न संवैधानिक अनुभवों को मिलाकर अपना स्वतंत्र लोकतांत्रिक संविधान बनाया।

सवाल यह है कि जब दुनिया से सीखकर बनी व्यवस्था के माध्यम से सत्ता हासिल करना स्वीकार्य है, तो उसी व्यवस्था में जनता का विरोध आपको संदिग्ध क्यों लगने लगता है ??पश्चिम से विकसित आधुनिक तकनीक स्वीकार है। पश्चिमी देशों के साथ व्यापार स्वीकार है। पश्चिम से प्रभावित संसदीय लोकतंत्र स्वीकार है। चुनावी व्यवस्था स्वीकार है।

आधुनिक संचार माध्यम स्वीकार हैं। तो फिर, जब उसी लोकतंत्र में कोई छात्र अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरता है, कोई बेरोजगार रोजगार मांगता है, कोई किसान अपनी फसल का उचित मूल्य मांगता है, या कोई नागरिक सरकार की नीतियों का विरोध करता है, तो उसके आंदोलन के पीछे पश्चिमी प्रभाव तलाशने की जरूरत क्यों पड़ती है ?? यह तो संस्कृति की रक्षा है या राजनीतिक सुविधा के अनुसार सिद्धांत बदलने की कला जी कही जाएगी ??

इतिहास का एक पन्ना पलटिए..

जब महात्मा गांधी अंग्रेजों के खिलाफ असहयोग आंदोलन चला रहे थे, क्या वह भारत को अस्थिर करने का प्रयास था ?? जब 1930 में गांधी जी ने दांडी मार्च किया, क्या वह कानून और व्यवस्था को चुनौती नहीं थी ??

जब 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन हुआ, क्या उस समय अंग्रेजी हुकूमत ने आंदोलनकारियों को अपनी सत्ता के लिए खतरा नहीं माना था। हां ये भी है कि आज कुछ बड़े दिखने वाले नामचीन संगठन उस समय अंग्रेजों के साथ थे।

अंग्रेज भी यही चाहते थे कि भारतीय शांत रहें, व्यवस्था चलती रहे और उनके शासन को चुनौती न मिले। लेकिन इतिहास ने हमें सिखाया कि किसी सरकार की स्थिरता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण जनता की स्वतंत्रता और न्याय है। भारत में विरोध की परंपरा कोई पश्चिम से आयातित वस्तु नहीं है। इस देश में बुद्ध ने स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी। कबीर ने धार्मिक पाखंड पर सवाल उठाए। ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने सामाजिक अन्याय तथा शिक्षा पर एकाधिकार को चुनौती दी। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष किया। भगत सिंह ने केवल अंग्रेजी शासन का विरोध नहीं किया, बल्कि शोषणमुक्त समाज का सपना देखा।

भारत की महानता इस बात में नहीं है कि यहां कभी विरोध नहीं हुआ। भारत की महानता इस बात में है कि यहां विरोध, तर्क, असहमति और परिवर्तन की लंबी परंपरा रही है। जब वर्तमान शासक दल भाजपा विपक्ष में थी, तब महंगाई के खिलाफ आंदोलन होते थे। भ्रष्टाचार के खिलाफ प्रदर्शन होते थे। सरकार से इस्तीफा मांगा जाता था। सड़कों पर उतरकर सत्ता से सवाल पूछे जाते थे। शायद तब, आंदोलन लोकतंत्र की ताकत हुआ करते थे।

लेकिन आज यदि युवा रोजगार, परीक्षा की पारदर्शिता, चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता या नागरिक अधिकारों को लेकर आंदोलन करते हैं, तो उन आंदोलनों के पीछे विदेशी प्रभाव या राजनीतिक षड्यंत्र की आशंका क्यों जताई जाती है ?? क्या आंदोलन की नैतिकता इस बात से तय होगी कि आंदोलन किस सरकार के खिलाफ हो रहा है ?? कभी जनता द्वारा विरोध जनजागरण, लेकिन जब विरोध सरकार का हो तो विदेशी प्रभाव ?? जब सत्ता परिवर्तन से किसी दल को लाभ हो तो लोकतंत्र की विजय, लेकिन जब सत्ता परिवर्तन की मांग सत्तासीनों के विरुद्ध उठे तो व्यवस्था को अस्थिर करने का प्रयास ?? इसे मापदंड कहा जाएगा।

संविधान का अनुच्छेद 19(1)(ए) नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है और अनुच्छेद 19(1)(बी) शांतिपूर्ण तथा बिना हथियार एकत्र होने का अधिकार देता है। इन अधिकारों पर संवैधानिक रूप से उचित प्रतिबंध संभव हैं, लेकिन सरकार से असहमति अपने आप में कोई अपराध नहीं है। संविधान ने नागरिकों को केवल पांच साल में एक बार वोट डालने का अधिकार देकर चुप रहने का आदेश नहीं दिया। लोकतंत्र का अर्थ है कि जनता चुनाव के बीच भी सवाल पूछ सकती है, आलोचना कर सकती है और शांतिपूर्ण विरोध कर सकती है।

एक दिलचस्प ऐतिहासिक तथ्य भी समझिए। भारत की संविधान सभा में अनेक ऐसे सदस्य थे जिन्होंने दुनिया के संविधानों का अध्ययन किया। डॉ. आंबेडकर स्वयं उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका और ब्रिटेन गए थे। उन्होंने आधुनिक संवैधानिक विचारों का गंभीर अध्ययन किया और भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप उनका उपयोग किया। क्या हम डॉ. आंबेडकर की संवैधानिक दृष्टि को इसलिए खारिज कर देंगे कि उन्होंने पश्चिमी राजनीतिक विचारों का भी अध्ययन किया था ??

विचारों की महानता उनकी भौगोलिक उत्पत्ति से नहीं, उनकी उपयोगिता और मानवीय मूल्यों से तय होती है। कोई विचार पश्चिम से आया है, इसलिए वह गलत नहीं हो जाता और कोई विचार भारत का है, इसलिए वह आलोचना से ऊपर नहीं हो जाता।यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। यही बौद्धिक ईमानदारी है। पश्चिमी प्रभाव को लेकर चिंता जताई गई है। पश्चिमी देशों की नीतियों, उपभोक्तावाद, साम्राज्यवाद या सांस्कृतिक वर्चस्व की आलोचना करना बिल्कुल उचित है। हर कोई जनता है कि पश्चिम की हर चीज अनुकरणीय नहीं है किंतु पश्चिमी वर्चस्व का विरोध और लोकतांत्रिक असहमति को विदेशी प्रभाव से जोड़ना दो अलग बातें हैं। हमें पश्चिम का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए, लेकिन पश्चिम से विकसित अच्छे विचारों को केवल इसलिए ठुकराना भी नहीं चाहिए कि वे पश्चिम से आए हैं।

और सबसे बड़ी बात..

भारतीय युवाओं को सवाल पूछने के लिए किसी विदेशी सभ्यता से प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता नहीं है।

जब उसका पेपर लीक होता है, तो उसका गुस्सा भारतीय होता है।

जब उसे नौकरी नहीं मिलती, तो उसकी परेशानी भारतीय होती है।

जब किसान अपनी उपज का मूल्य मांगता है, तो उसका संघर्ष भारतीय होता है। जब कोई नागरिक सत्ता से जवाब मांगता है, तो उसका अधिकार भारतीय संविधान से आता है।

हर विरोध के पीछे विदेशी हाथ तलाशने के बजाय कभी उन परिस्थितियों को भी देखिए जो नागरिकों को सड़कों पर आने के लिए मजबूर करती हैं। भारत कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है जहां लोकतंत्र के अधिकार केवल सत्ता के समर्थकों को मिलें और विरोधियों के हिस्से में उपदेश आएं। यह गांधी का भारत है, भगत सिंह का भारत है, फुले का भारत है, पेरियार का भारत है और डॉ. आंबेडकर के संविधान से संचालित भारत है।

यहां सरकारें जनता से बनती हैं। जनता सरकारों से नहीं बनती।

यहां प्रधानमंत्री संवैधानिक पद है, कोई राजा का सिंहासन नहीं।

यहां सत्ता की आलोचना राष्ट्र का अपमान नहीं है।

यहां सरकार बदलने की शांतिपूर्ण और संवैधानिक मांग लोकतांत्रिक राजनीति का हिस्सा है।

और सबसे महत्वपूर्ण बात..

सरकार के खिलाफ होना, देश के खिलाफ होना नहीं है।

उन लोगों से एक सवाल है जो हर असहमति को संदेह की नजर से देखते हैं। यदि लोकतंत्र आपको सत्ता तक पहुंचाने का माध्यम है, तो वही लोकतंत्र जनता को आपकी सत्ता से सवाल पूछने का अधिकार भी देता है। आप लोकतंत्र के लाभ तो स्वीकार करें, लेकिन उसकी असहमति से असहज हो जाएं, यह कैसे चलेगा?? लोकतंत्र कोई ऐसी थाली नहीं है जिसमें आप अपनी पसंद के अधिकार चुन लें और बाकी अधिकारों को पश्चिमी सभ्यता का दुष्प्रभाव बताकर बाहर फेंक दे। भारत के युवाओं को पश्चिमी सभ्यता से बचाने से पहले उन्हें बेरोजगारी, अन्याय, भ्रष्टाचार और अवसरों की असमानता से बचाने पर चर्चा कीजिए। क्योंकि एक सवाल पूछने वाला युवा लोकतंत्र के लिए खतरा नहीं है। लोकतंत्र के लिए खतरा तब पैदा होता है, जब सत्ता सवालों से डरने लगती है।

और इतिहास गवाह है..

जिस दिन किसी देश का युवा सवाल पूछना बंद कर देता है, उस दिन लोकतंत्र कमजोर पड़ने लगता है। इसलिए युवाओं को सवाल पूछने दीजिए। उन्हें असहमत होने दीजिए। उन्हें शांतिपूर्ण विरोध करने दीजिए। क्योंकि लोकतंत्र में सरकार की जय-जयकार करना अनिवार्य नहीं, लेकिन संविधान का सम्मान करना अनिवार्य है।

–महावीर सिंह,
पूर्व आईएएस एवं एक किसान, महावीर सिंह फौजदार,
अध्यक्ष जाट महासभा अजमेर)

अर्बन नक्सल विमर्श, सत्ता परिवर्तन और भारतीय संविधान

सूर्यप्रताप सिंह राजावत

भारतीय संविधान की उद्देशिका के प्रथम शब्द हैं-हम, भारत के लोग। ये शब्द भारत की संवैधानिक संप्रभुता के मूल आधार को अभिव्यक्त करते हैं। 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित तथा 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ हमारा संविधान केवल शासन चलाने का दस्तावेज नहीं, बल्कि राष्ट्र की संप्रभुता, लोकतांत्रिक संस्थाओं, नागरिक स्वतंत्रताओं और विधि के शासन का आधार है। लेकिन एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: क्या हम, भारत के लोग का अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति, संगठन अथवा राजनीतिक समूह अपनी इच्छानुसार सत्ता परिवर्तन के लिए संवैधानिक संस्थाओं को दरकिनार कर सकता है? क्या लोकप्रिय समर्थन का दावा करके निर्वाचित सरकार को हटाने के लिए किसी भी प्रकार के साधनों को उचित ठहराया जा सकता है? इन प्रश्नों पर गंभीर संवैधानिक विमर्श आवश्यक है।

सत्ता परिवर्तन: लोकतांत्रिक अधिकार या संवैधानिक व्यवस्था को चुनौती? -अक्टूबर 2026 में निर्वाचन आयोग और मतदाता सूचियों के विशेष गहन पुनरीक्षण से संबंधित विवादों के बीच सत्ता परिवर्तन की माँग सार्वजनिक विमर्श का विषय बनी। 15 अक्टूबर 2026 को दिल्ली में आयोजित एक संवाददाता सम्मेलन में वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशांत भूषण ने कहा कि वे सत्ता परिवर्तन चाहते हैं और इसे नागरिकों का लोकतांत्रिक अधिकार बताया। इसी संवाददाता सम्मेलन में ऑल इंडिया स्टूडेंट्स एसोसिएशन की अध्यक्ष नेहा बोरा तथा कॉकरोचजनता पार्टी के संस्थापक अभिजीत दिपके भी उपस्थित थे। नेहा बोरा ने बांग्लादेश के Gen Z आंदोलन का उल्लेख करते हुए उसे भारत के युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत बताया।

'अर्बन नक्सल' मानसिकता और वैचारिक प्रश्न-'अर्बन नक्सल' अथवा 'अर्बन नक्सल मानसिकता' जैसे शब्द भारतीय राजनीतिक विमर्श में प्राय: उन व्यक्तियों या समूहों के संदर्भ में इस्तेमाल किए जाते हैं जिन पर माओवादी विचारधारा अथवा नक्सली आंदोलन के प्रति सहानुभूति रखने का आरोप लगाया जाता है जो सत्ता परिवर्तन में हिंसा को वैध मानते हैं अक्टूबर 2026 में सत्ता परिवर्तन संबंधी बयानों के बाद भारतीय जनता पार्टी के नेताओं ने आरोप लगाया कि संबंधित विरोध प्रदर्शनों के पीछे केवल चुनाव सुधारों का प्रश्न नहीं, बल्कि सरकार को अस्थिर करने और सत्ता परिवर्तन का व्यापक उद्देश्य भी हो सकता है। भाजपा अध्यक्ष नितिन नबीन ने इस राजनीतिक अभियान को कथित 'अर्बन नक्सल' एजेंडे से जोड़ते हुए आलोचना की। फ्रांस में हालिया विरोध-प्रदर्शनों, बांग्लादेश में 2024 के जनांदोलन और नेपाल में 2025 के आंदोलन ने दिखाया है कि जन-असंतोष किस प्रकार हिंसा और राजनीतिक उथल-पुथल में बदल सकता है। भारत में निर्वाचन प्रक्रिया से जुड़े विरोध-प्रदर्शनों के बीच वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशांत भूषण द्वारा सत्ता परिवर्तन की माँग और ँघ्ँ की अध्यक्ष नेहा बोरा द्वारा बांग्लादेश आंदोलन का उल्लेख राजनीतिक बहस का विषय बना है। कांग्रेस नेता पवनखेड़ा ने भी सत्ता परिवर्तन की बात कही है। भारत की संप्रभुता की रक्षा संविधान, लोकतांत्रिक संस्थाओं और विधि के शासन के सम्मान में निहित है। फिर भी यह विमर्श एक व्यापक संवैधानिक प्रश्न अवश्य उठाता है: क्या किसी राजनीतिक आंदोलन के नाम पर ऐसी विचारधारा अथवा रणनीति को वैधता दी जा सकती है जो लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करके राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का समर्थन करती हो? यदि किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा सशस्त्र विद्रोह, हिंसक उथल-पुथल अथवा बलपूर्वक सरकार गिराने की वकालत की जाती है, तो उसके आचरण का परीक्षण संविधान और लागू कानूनों के अनुसार होना चाहिए।

सशस्त्र विद्रोह का संवैधानिक संप्रभुता में कोई स्थान नहीं-भारतीय लोकतंत्र का आधार यह है कि राजनीतिक सत्ता संविधान द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं के माध्यम से प्राप्त की जाती है। संसद और राज्य विधानमंडलों का गठन चुनावों से होता है। सरकारें संवैधानिक नियमों के अनुसार कार्य करती हैं और न्यायपालिका कानूनों तथा सरकारी कार्यों की न्यायिक समीक्षा कर सकती है। सशस्त्र विद्रोह और हिंसक साधनों से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास इस संवैधानिक व्यवस्था के मूल सिद्धांतों से असंगत है। संवैधानिक लोकतंत्र में किसी भी राजनीतिक समूह को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी वैचारिक श्रेष्ठता या कथित जनसमर्थन के आधार पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया का स्थान बल प्रयोग को दे दे।अत: यह सिद्धांत स्पष्ट होना चाहिए:संवैधानिक संप्रभुता के अंतर्गत सशस्त्र विद्रोह द्वारा सत्ता प्राप्त करने का कोई वैध स्थान नहीं है।

'हम, भारत के लोग' का वास्तविक अर्थ-संविधान की उद्देशिका जनता को संवैधानिक व्यवस्था का मूल स्त्रोत स्वीकार करती है। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक नागरिक या संगठन को असीमित संप्रभु शक्ति प्राप्त है। जनता की संप्रभुता संविधान द्वारा स्थापित संस्थाओं, अधिकारों, कर्तव्यों और प्रक्रियाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने 4 नवंबर 1948 को संविधान सभा में संवैधानिक नैतिकता के महत्त्व पर बल दिया था।

लोकतांत्रिक असहमति और संवैधानिक मर्यादा-भारत में राजनीतिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव हैं। यदि किसी राजनीतिक दल या नागरिक समूह को सरकार की नीतियों, निर्वाचन प्रक्रिया या संवैधानिक संस्थाओं के कामकाज पर आपत्ति है, तो उसे शांतिपूर्ण विरोध, न्यायिक उपचार, सार्वजनिक विमर्श और लोकतांत्रिक प्रक्रिया का सहारा लेना चाहिए। जब निर्वाचन आयोग से संबंधित कोई विवाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन हो, तब संवैधानिक नैतिकता यह अपेक्षा करती है कि सभी राजनीतिक दल न्यायपालिका में विश्वास बनाए रखें और न्यायिक प्रक्रिया के परिणाम की प्रतीक्षा करें। न्यायालय में लंबित विषयों पर जनमत को प्रभावित करने के उद्देश्य से चलाए जाने वाले मीडिया ट्रायल तथा अप्रमाणित आरोप संवैधानिक संस्थाओं की निष्पक्षता पर अनावश्यक प्रश्न खड़े कर सकते हैं। लोकतंत्र में असहमति और आलोचना का अधिकार महत्त्वपूर्ण है, किंतु उसके साथ संस्थागत मर्यादा और जिम्मेदारी भी आवश्यक है। न्यायपालिका में आस्था, तथ्यों पर आधारित विमर्श और न्यायिक प्रक्रिया के प्रति संयम ही संवैधानिक लोकतंत्र की वास्तविक कसौटी हैं।भारत की संवैधानिक संप्रभुता किसी एक राजनीतिक दल, सरकार, विपक्ष, संगठन या विचारधारा की संपत्ति नहीं है। यह उस संवैधानिक व्यवस्था में निहित है जिसे भारत के लोगों ने स्वीकार किया है। सत्ता परिवर्तन लोकतंत्र का स्वाभाविक हिस्सा है, लेकिन उसका औचित्य और तरीका महत्त्वपूर्ण है। शांतिपूर्ण असहमति लोकतंत्र को मजबूत करती है; हिंसा और सशस्त्र विद्रोह उसकी संस्थागत नींव को चुनौती देते हैं। भारत में सरकारें बदल सकती हैं, नीतियाँ बदल सकती हैं और राजनीतिक विचारधाराएँ बदल सकती हैं; लेकिन सत्ता प्राप्त करने की प्रक्रिया संविधान के अधीन ही रहनी चाहिए। संवैधानिक संप्रभुता की रक्षा का अर्थ है-लोकतांत्रिक असहमति का सम्मान करना और साथ ही सशस्त्र विद्रोह द्वारा सत्ता प्राप्त करने की अवधारणा को अस्वीकार करना।मुझे इस संदर्भ में संविधान सभा में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा 25 नवंबर 1949 को दिए गए उनके ऐतिहासिक वक्तव्य के ये शब्द स्मरण हो आते हैं-यदि हम लोकतंत्र को केवल औपचारिक रूप में ही नहीं, बल्कि वास्तविक रूप में भी बनाए रखना चाहते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए? मेरी दृष्टि में, सबसे पहले हमें अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक तरीकों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। इसका अर्थ है कि हमें क्रांति के रक्तरंजित तरीकों का परित्याग करना होगा।

–सूर्य प्रताप सिंह राजावत,
अधिवक्ता, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर

राशिफल

पंडित अनिल शर्मा

सोमवार 26 अक्टूबर, 2026

आश्विन मास, शुक्ल पक्ष, पूर्णिमा, सोमवार, विक्रम संवत-2083, अश्विनी नक्षत्र सायं 7:41 तक, वज्र योग दिन 2:17 तक, बव करण प्रात: 9:42 तक, चन्द्रमा आज मेष राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति– सूर्य-तुला, चन्द्रमा-मेष, मंगल-कर्क, बुध-तुला, गुरू-कर्क, शुक्र-तुला, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-सिंह

आज कुमार योग दिन 9:42 से सायं 5:41 तक है। आज सत्य व्रत, श्री वाल्मीकी